प्रवचनसार संकलन - जयेश शेठ(बोरीवली)

प्रश्न : द्रव्य जिस समय जिस भावरूपसे परिणमन करता है उस समय उस मय है ?

समाधान : **1)अन्वयार्थ :[द्रव्यं]** द्रव्य जिस समय **[येन]** जिस भावरूपसे **[परिणमति]** परिणमन करता है **[तत्कालं]** उस समय **[तन्मयं]** उस मय है **[इति]** ऐसा **[प्रज्ञप्तं]** (जिनेन्द्र देवने) कहा है; **[तस्मात्]** इसलिये **[धर्मपरिणतः आत्मा]** धर्मपरिणत आत्मा को **[धर्मःमन्तव्यः]**धर्म समझना चाहियें। गाथा 8 पृष्ठ 12

2)भावार्थ : सातवीं गाथामें कहा गया है कि चारित्र आत्माका ही भाव है और इस गाथामें अभेदनयसे यह कहा है कि जैसे उष्णतारूप परिणमित लोहेका गोला स्वयं ही उष्णता है लोहेका गोला और उष्णता पृथक् नहीं है, इसी प्रकार चारित्रभावसे परिणमित आत्मा स्वयं ही चारित्र है। गाथा 8 पृष्ठ 13

प्रश्न : द्रव्य किसे कहते है ?

समाधान : 1)'समगुणपर्यायं द्रव्यं (गुण-पर्यायें अर्थात् युगपद् सर्वगुण और पर्यायें ही द्रव्य है)' गाथा 23 पृष्ठ 40

2) अन्वयार्थ :[द्रव्याणि] द्रव्य, **[गुणाः]** गुण **[तेषां पर्यायाः]** और उनकी पर्यायें **[अर्थसंज्ञया]** 'अर्थ' नामसे **[भणिताः]** कही गई हैं। **[तेषु]** उनमें, **[गुण पर्यायाणाम् आत्मा द्रव्यम्]** गुण-पर्यायोंका आत्मा द्रव्य है (गुण और पर्यायोंका स्वरूप-सत्त्व द्रव्य ही है, वे भिन्न वस्तु नहीं हैं) **[इति उपदेशः]** इसप्रकार (जिनेन्द्रका) उपदेश है। गाथा 87 पृष्ठ 148

3) अर्थात् द्रव्यों, गुणों और पर्यायोंमें वाच्यका भेद होने पर भी वाचकमें भेद न दखें तो 'अर्थ' ऐसे एक ही वाचक (-शब्द) से ये तीनों पहिचाने जाते हैं। गाथा 87 पृष्ठ 149

4)**अन्वयार्थ :[अपरित्यक्तस्वभावेन]** स्वभावको छोड़े बिना **[यत्]** जो **[उत्पादव्ययध्रुवत्वसंबद्धम्]** उत्पाद-व्यय -ध्रौव्यसंयुक्त है **[च]** तथा **[गुणवत् सपर्यायं]** गुणयुक्त और पर्यायसहित है, **[तत्]** उसे **[द्रव्यम् इति]**'द्रव्य ' **[ब्रुवन्ति]** कहते हैं। गाथा 95 पृष्ठ 170

5) द्रव्यका उन उत्पादादिके साथ अथवा गुणपर्यायोंके साथ लक्ष्य-लक्षण भेद होने पर भी स्वरूपभेद नहीं है। स्वरूपसे ही द्रव्य वैसा (उत्पादादि अथवा गुण पर्यायवाला) है वस्त्रके समान । गाथा 95 पृष्ठ 172

6)जैसे वही वस्त्र एक ही समयमें निर्मल अवस्थासे उत्पन्न होता हुआ, मलिन अवस्थासे व्ययको प्राप्त होता हुआ और टिकनेवाली ऐसी वस्त्रत्व-अवस्थासे ध्रुव रहता हुआ ध्रौव्यसे लक्षित होता है; परन्तु उसका उस ध्रौव्यके साथ स्वरूपभेद नहीं है, स्वरूपसे ही वैसा है; इसीप्रकार वही द्रव्य भी एक ही समय उत्तर अवस्थासे उत्पन्न होता हुआ, पूर्व अवस्थासे व्यय होता हुआ, और टिकनेवाली ऐसी द्रव्यत्वअवस्थासे ध्रुव रहता हुआ ध्रौव्यसे लक्षित होता है। किन्तु उसका उस ध्रौव्यके साथ स्वरूपभेद नहीं है, वह स्वरूपसे ही वैसा है । गाथा 95 पृष्ठ 173

7) **अन्वयार्थ :[सदविशिष्टं]** सत्तापेक्षासे अविशिष्टरूपसे, **[द्रव्यं स्वयं]** द्रव्य स्वयं ही **[गुणतः च गुणान्तरं]** गुण से गुणान्तररूप **[परिणमते]** परिणमित होता है, अर्थात् द्रव्य स्वयं ही एक गुणपर्यायमेंसे अन्य गुणपर्यायरूप परिणमित होता है, और उसकी सत्ता गुणपर्यायोंकी सत्ताके साथ अविशिष्ट अभिन्न एक ही रहती है),**[तस्मात् पुनः]** और उनसे **[गुणपर्यायाः]** गुणपर्यायें **[द्रव्यम् एव इति भणिताः]** द्रव्य ही कही गई हैं

टीका : गुणपर्यायें एक द्रव्यपर्यायें हैं, क्योंकि गुणपर्यायोंको एक द्रव्यपना है, (अर्थात् गुणपर्यायें एकद्रव्यकी पर्यायें हैं ,क्योंकि वे एक ही द्रव्य हैं भिन्न-भिन्न द्रव्य नहीं) उनका एकद्रव्यत्व आम्रफलकी भाँति है जैसे–आम्रफल स्वयं ही हरितभावमेंसे पीतभावरूप परिणमित होता हुआ, प्रथम और पश्चात् प्रवर्तमान हरितभाव और पीतभावके द्वारा अपनी सत्ताका अनुभव करता है, इसलिये हरितभाव और पीतभावके साथ अविशिष्ट सत्तावाला होनेसे एक ही वस्तु है, अन्य वस्तु नहीं; इसीप्रकार द्रव्य स्वयं ही पूर्व अवस्थामें अवस्थित गुणमेंसे उत्तर अवस्थामें अवस्थित गुणरूप परिणमित होता हुआ, पूर्व और उत्तर अवस्थामें अवस्थित उन गुणोंके द्वारा अपनी सत्ताका अनुभव करता है, इसलिये पूर्व और उत्तर अवस्थामें अवस्थित गुणोंके साथ अवशिष्ट सत्तावाला होनेसे एक ही द्रव्य है, द्रव्यान्तर नहीं । गाथा 104 पृष्ठ 200-201

प्रश्न : द्रष्टी का विषय और वस्तु सामान्य-विशेषातमक है उसका आधार ?

समाधान : 1)**टीका :** जैसे भगवान, युगपत् परिणमन करते हुए समस्त चैतन्यविशेषयुक्त केवलज्ञानके द्वारा, अनादिनिधन-निष्कारण-असाधारण-स्वसंवेद्यमान चैतन्यसामान्य जिसकी महिमा है (द्रष्टी का विषय) गाथा 33 पृष्ठ 56

2)चैतन्यानुविधायी ऐकाकी आत्मपरिणाम शक्तियोंसे तथाविध अतीन्द्रिय स्वाभाविकचिदाकार-परिणामोंके द्वारा उत्पन्न होता हुआ(सहज परिणमन)अत्यन्त आत्माधीन होनेसे नित्य युगपत् प्रवर्तमान, निःप्रतिपक्ष और हानिवृद्धिसे रहित है, इसलिये मुख्य है, ऐसा समझकर वह (ज्ञान और सुख) उपादेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य है। (द्रष्टी का विषय) गााथा 53 पृष्ठ 92

3)**भावार्थ :** अरहंत भगवान और अपना आत्मा निश्चयसे समान है अरहंत भगवान मोह-राग-द्वेषरहित होनेसे उनका स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट है, इसलिये यदि जीव द्रव्य-गुण-पर्याय रूपसे उस (अरहंत भगवानके) स्वरूपको मनके द्वारा प्रथम समझ ले तो ''यह जो आत्मा, आत्माका एकरूप (-कथंचित् सदृश) त्रैकालिक प्रवाह है सो द्रव्य है, उसका जो एकरूप रहनेवाला चैतन्यरूप विशेषण है सो गुण है और उस प्रवाहमें जो क्षणवर्ती व्यतिरेक हैं सो पर्यायें हैं'' इसप्रकार अपना आत्मा भी द्रव्य-गुण-पर्यायरूपसे मनके द्वारा ज्ञानमें आता है इसप्रकार त्रैकालिक निज आत्माको मनके द्वारा ज्ञानमें लेकर जैसे मोतियोंको और सफेदीको हारमें ही अन्तर्गत करके मात्र हार ही जाना जाता है, उसीप्रकार आत्मपर्यायोंको और चैतन्य-गुणको आत्मामें ही अन्तर्गर्भित करके(द्रष्टी का विषय) केवल आत्माको जानने पर परिणामी-परिणाम-परिणतिके भेदका विकल्प नष्ट हो जाता है, इसलिये जीव निष्क्रिय चिन्मात्र भावको प्राप्त होता है, (शुद्धोपयोग)– और उससे दर्शनमोह निराश्रय होता हुआ नष्ट हो जाता है। गाथा 80 पृष्ठ 138

4) इसलिये द्रव्यार्थिक कथनसे सत्-उत्पाद है,(द्रव्य द्रष्टी) पर्यायार्थिक कथनसे असत्-उत्पाद है (पर्याय द्रष्टी) यह बात अनवद्य (निर्दोष, अबाध्य) है। .....

यहाँ यह लक्ष्यमें रखना चाहिये कि द्रव्य और पर्यायें भिन्न-भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं; इसलिये पर्यायोंकी विवक्षाके समय भी, असत्-उत्पादमें, जो पर्यायें हैं वे द्रव्य ही हैं,(द्रव्य द्रष्टी) और द्रव्यकी विवक्षाके समय भी सत्-उत्पादमें , जो द्रव्य है वे ही पर्यायें ही हैं । (पर्याय द्रष्टी) गाथा 111 पृष्ठ 219

5) **भावार्थ :** प्रत्येक द्रव्य सामान्य-विशेषात्मक है, इसलिये प्रत्येक द्रव्य वहका वही रहता है (टिकता भाव) और बदलता भी है(परिणमता भाव) द्रव्यका स्वरूप ही ऐसा उभयात्मक होनेसे द्रव्यके अनन्यत्वमें और अन्यत्व में विरोध नहीं है जैसे–मरीचि और भगवान महावीरका जीवसामान्यकी अपेक्षासे अनन्यत्व और जीव विशेषोंकी अपेक्षासे अन्यत्व होनेमें किसी प्रकारका विरोध नहीं है। द्रव्यार्थिकनयरूपी एक चक्षुसे देखने पर द्रव्यसामान्य ही ज्ञात होता है, इसलिये द्रव्य अनन्य अर्थात् वहका वही भासित होता है (द्रव्य द्रष्टी)और पर्यायार्थिकनयरूपी दूसरी एक चक्षुसे देखने पर द्रव्यके पर्यायरूप विशेष ज्ञात होते हैं, (पर्याय द्रष्टी) इसलिये द्रव्य अन्य-अन्य भासित होता है दोनों नयरूपी दोनों चक्षुओंसे देखने पर द्रव्यसामान्य और द्रव्यके विशेष दोनों ज्ञात होते हैं, इसलिये द्रव्य अनन्य तथा अन्य-अन्य दोनों भासित होता है ।(प्रमाण द्रष्टी) गाथा 114 पृष्ठ 225

6)**अर्थ :**इसप्रकार विशेष आदरपूर्वक पुराण पुरुषोंके द्वारा सेवित, उत्सर्ग और अपवाद द्वारा अनेक पृथक्-पृथक् भूमिकाओंमें व्याप्त जो चारित्र उसको यति प्राप्त करके, क्रमशः अतुल निवृत्ति करके, चैतन्यसामान्य और चैतन्यविशेषरूप जिसका प्रकाश है ऐसे निजद्रव्यमें सर्वतः स्थिति करो ।(वस्तु सामान्य-विशेषातमक है जो द्रव्य द्रष्टीका सामान्य विशेष है वो ही पर्याय द्रष्टी में पर्यायका सामान्य विशेष है इस रीत से चार भाव नही है सिर्फ दो भाव है)। श्लोक 15 पृष्ठ 429

7)**टीका :**जो पुरुष अनेकान्तकेतन आगमज्ञानके बलसे, सकल पदार्थोंके ज्ञेयाकारोंके साथ मिलित होता हुआ, विशद एक ज्ञान जिसका आकार है ऐसे आत्माका श्रद्धान और अनुभव करता हुआ । (श्रद्धा का और अनुभवका विषय एक है) गाथा 240 पृष्ठ

8)आत्मा वास्तवमें चैतन्यसामान्यसे व्याप्त अनन्त धर्मोंका अधिष्ठाता (स्वामी)एक द्रव्य है। (परिशिष्ट पृष्ठ 493)
वह आत्मद्रव्य द्रव्यनयसे, पटमात्रकी भाँति, चिन्मात्र है। (अर्थात् आत्मा द्रव्यनयसे चैतन्यमात्र है, जैसे वस्त्र वस्त्रमात्र है तदनुसार) (द्रव्य द्रष्टी) (परिशिष्ट पृष्ठ 493)
आत्मद्रव्य विकल्पनयसे, बालक, कुमार और वृद्ध ऐसे एक पुरुषकी भाँति, सविकल्प है (अर्थात् आत्मा भेदनयसे, भेदसहित है, जैसे कि एक पुरुष बालक, कुमार और वृद्ध ऐसेभेदवाला है ।)10.(पर्याय द्रष्टी) (परिशिष्ट पृष्ठ 496)

9)7) शब्दरूप पुद्गलोल्लास (पुद्गलपर्याय) के साथ संबंधसे जिसमें चैतन्यरूपी भित्तिका भाग (द्रष्टी का विषय)(गाथा 155 का चैतन्यानुविधायी परिणाम)मलिन होता है, ऐसी शुद्धात्मद्रव्यसे विरुद्ध कथा (गाथा 155 का उपयोग विशेष) में भी प्रतिबंध निषेध्य -त्यागने योग्य है अर्थात् उन के विकल्पोंसे भी चित्तभूमिको चित्रित होने देना योग्य नहीं है। गाथा 215 पृष्ठ 396

10)जिसने अन्य द्रव्यसे भिन्नताके द्वारा आत्माको एक ओर हटा लिया है (अर्थात् परद्रव्योंसे अलग दिखाया है) तथा जिसने समस्त विशेषोंके समूहको सामान्यमें लीन किया है (द्रव्य द्रष्टी) (अर्थात् समस्त पर्यायोंको द्रव्यके भीतर डूबा हुआ दिखाया है)ऐसा जो यह, उद्धत मोहकी लक्ष्मीको (-ऋद्धिको, शोभाको) लूँट लेनेवाला शुद्धनय है,(द्रष्टी का विषय)उसने उत्कट विवेकके द्वारा तत्त्वको (आत्मस्वरूपको) विविक्त किया है । श्लोक 7 पृष्ठ 250

सम्यग्दृष्टि जीव भेदोंको न भाकर अभेद आत्माको ही भाता अनुभव करता है (अभेदनय =द्रव्य द्रष्टी) (फूटनोट पृष्ठ 250)
अभेद दृष्टिमें कर्ता, करण इत्यादि भेद नहीं हैं,यह सब एक आत्मा ही है अर्थात् पर्यायें द्रव्यके भीतर लीन हो गई हैं '(अभेदनय =द्रव्य द्रष्टी)(फूटनोट पृष्ठ247)

11)'रागपरिणामका कर्ता भी आत्मा ही है और वीतराग परिणामका भी; अज्ञानदशा भी आत्मा स्वतंत्रतया करता है और ज्ञानदशा भी'; ऐसे यथार्थ ज्ञानके भीतर द्रव्यसामान्यका ज्ञान गर्भितरूपसे समा ही जाता है यदि विशेषका भलीभाँति यथार्थ ज्ञान हो तो यह विशेषोंको करनेवाला सामान्यका ज्ञान होना ही चाहिये द्रव्यसामान्यके ज्ञानके बिना पर्यायोंकायथार्थ ज्ञान हो ही नहीं सकता इसलिए उपरोक्त निश्चयनयमें द्रव्यसामान्यका ज्ञान गर्भितरूपसे समा ही जाता है जो जीव बंधमार्गरूप पर्यायमें तथा मोक्षमार्गरूप पर्यायमें आत्मा अकेला ही है, इसप्रकार यथार्थतया (द्रव्यसामान्यकी अपेक्षा सहित) जानता है, वह जीव परद्रव्यसे संयुक्त नहीं होता, और द्रव्यसामान्यके भीतर पर्यायोंको डुबाकर, सुविशुद्ध होता है (अनुभवकी रीत) इसप्रकार पर्यायोंके यथार्थ ज्ञानमें द्रव्यसामान्यका ज्ञान अपेक्षित होनेसे और द्रव्य-पर्यायोंके यथार्थज्ञानमें द्रव्यसामान्यका आलम्बनरूप अभिप्राय अपेक्षित होनेसे(द्रष्टीका विषय) उपरोक्त निश्चयनयको उपादेय कहा है। (फूटनोट पृष्ठ351)

प्रश्न : कूटस्थ विषे ?

समाधान : **1)भावार्थ :**आत्मा सर्वथा कूटस्थ नहीं है किन्तु स्थिर रहकर परिणमन करना उसका स्वभाव है, इसलिये वह जैसे जैसे भावोंसे परिणमित होता है वैसा वैसा ही वह स्वयं हो जाता है। गाथा 9 पृष्ठ 14

2)(आत्मा और द्रव्य समय-समय पर परिणमन किया करते हैं, वे कूटस्थ नहीं हैं; इसलिये आत्मा ज्ञान स्वभावसे और द्रव्य ज्ञेय स्वभावसे परिणमन करता है, इसप्रकार ज्ञान स्वभावमें परिणमित आत्मा ज्ञानके आलम्बनभूत द्रव्योंको जानता है और ज्ञेय-स्वभावसे परिणमित द्रव्य ज्ञेयके आलम्बनभूत ज्ञानमें आत्मामें ज्ञात होते हैं।) गाथा 36 पृष्ठ 63

3) कूटस्थ = सदा एकरूप रहनेवाला; अचल (केवलज्ञान सर्वथा अपरिणामी नहीं है, किन्तु वह एक ज्ञेयसे दूसरे ज्ञेयके प्रति नहीं बदलता–सर्वथा तीनों कालके समस्त ज्ञेयाकारोंको जानता है, इसलिये उसे कूटस्थ कहा है।) (फूटनोट पृष्ठ 105)

4) **टीका :**प्रथम तो द्रव्य द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्तिको कभी भी न छोड़ता हुआ सत् (विद्यमान) ही है और द्रव्यके जो पर्यायभूत व्यतिरेकव्यक्तिका उत्पाद होता है उसमें भी द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्तिका अच्युतपना होनेसे द्रव्य अनन्य ही है,(अर्थात् उस उत्पादमें भी अन्वयशक्ति तो अपतित-अविनष्ट-निश्चल होनेसे द्रव्य वहका वही है, अन्य नहीं) इसलिये अनन्यपनेके द्वारा द्रव्यका सत्-उत्पाद निश्चित होता है ।(कूटस्थ नित्यका जैन धर्मका सम्यक्स्वरूप)(द्रव्य द्रष्टी)गाथा 112 पृष्ठ 220

प्रश्न : आत्माका अनित्य स्वरूप ? (पर्याय द्रष्टी)

समाधान : **टीकाः** पर्यायें पर्यायभूत स्वव्यतिरेकव्यक्तिके कालमें ही सत् (-विद्यमान) होनेसे, उससे अन्य कालोंमें असत् (-अविद्यमान) ही हैं और पर्यायोंका द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्तिके साथ गुंथा हुआ (-एकरूपतासे युक्त) जो क्रमानुपाती (क्रमानुसार) स्वकालमें उत्पाद होता है उसमें पर्यायभूत स्वव्यतिरेकव्यक्तिका पहले असत्पना होनेसे, पर्यायें अन्य ही हैं इसीलिये पर्यायोंकी अन्यताके द्वारा द्रव्यका जो कि पर्यायोंके स्वरूपका कर्ता,करण और अधिकरण होनेसे पर्यायोंसे अपृथक् है उसका असत्-उत्पाद निश्चित होता है । गाथा 113 पृष्ठ 222

प्रश्न : आत्मा परिणमता नही ?

समाधान : **1) अन्वयार्थ :**[**जीवः**] जीव [**परिणामस्वभावः**] परिणामस्वभावी होनेसे [**यदा**] जब [**शुभेन वा अशुभेन**] शुभ या अशुभ भावरूप [**परिणमति**] परिणमन करता है [**शुभः अशुभः**] तब शुभ या अशुभ (स्वयं ही) होता है, [**शुद्धेन**] और जब शुद्धभावरूप परिणमित होता है [**तदा शुद्धः हि भवति**] तब शुद्ध होता है । गाथा 9 पृष्ठ 13

2)वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय है अर्थात् वह उत्पन्न होती है, नष्ट होती है और स्थिर रहती है इसप्रकार वह द्रव्य- गुण-पर्यायमय और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय होनेसे उसमें क्रिया (परिणमन) होती ही रहती है इसलिये परिणाम वस्तुका स्वभाव ही है। गाथा 10 पृष्ठ 17

3)**टीका :**यदि एकान्तसे ऐसा माना जाये कि शुभाशुभभावरूप स्वभावमें (-अपने भावमें) आत्मा स्वयं परिणमित नहीं होता, तो यह सिद्ध हुआ कि (वह) सदा ही सर्वथा निर्विघात शुद्धस्वभावसे ही अवस्थित है; और इसप्रकार समस्त जीवसमूह, समस्त बन्धकारणोंसे रहित सिद्ध होनेसे संसार अभावरूप स्वभावके कारण नित्यमुक्तताको प्राप्त हो जायेंगे अर्थात् नित्यमुक्त सिद्ध होवेंगे किन्तु ऐसा स्वीकार नहीं किया जा सकता; क्योंकि आत्मा परिणामधर्मवाला होनेसे, जैसे स्फटिकमणि, जपाकुसुम और तमालपुष्पके रंग-रूप स्वभावयुक्ततासे प्रकाशित होता है उसीप्रकार, उसे (आत्मा के) शुभाशुभ-स्वभावयुक्तता प्रकाशित होती है । (जैसे स्फटिकमणि लाल और काले फूलके निमित्तसे लाल और काले स्वभावमें परिणमित दिखाई देता है उसीप्रकार आत्मा कर्मोपाधिके निमित्तसे शुभाशुभ स्वभावरूप परिणमित होता हुआ दिखाई देता है) गाथा 46 पृष्ठ 77-78

प्रश्न : जैन धर्मका ध्रुव कैसा है ?

समाधान : **टीका :**जो परद्रव्यसे अभिन्न होनेके कारण और परद्रव्यके द्वारा उपरक्त होनेवाले स्वधर्मसे भिन्न होनेके कारण आत्माको अशुद्धपनेका कारण है, ऐसा (आत्माके अतिरिक्त) दूसरा कोई भी ध्रुव नहीं है, क्योंकि वह असत् और हेतुमान् होनेसे आदि–अन्तवाला और परतःसिद्ध है; ध्रुव तो उपयोगात्मक शुद्ध आत्मा ही है । गाथा 193 पृष्ठ 357

प्रश्न : आत्मा स्वपर प्रकाशक है ?

समाधान : प्रथम तो मैं स्वभावसे ज्ञायक ही हूँ; केवल ज्ञायक होनेसे मेरा विश्व (समस्त पदार्थो) के साथ भी सहज ज्ञेयज्ञायकलक्षण सम्बन्ध ही है, किन्तु अन्य स्वस्वामिलक्षणादि सम्बन्ध नहीं हैं; इसलिये मेरा किसीके प्रति ममत्व नहीं है, सर्वत्र निर्ममत्व ही है अब, एक ज्ञायकभावका समस्त ज्ञेयोंको जाननेका स्वभाव होनेसे, क्रमशः प्रवर्तमान, अनन्त, भूत-वर्तमान-भावी विचित्र पर्याय समूहवाले, अगाधस्वभाव और गम्भीर ऐसे समस्त द्रव्यमात्रको मानों वे द्रव्य ज्ञायक में उत्कीर्ण हो गये हों, चित्रित होगए हों, भीतर घुस गये हों, कीलित हो गये हों, डूब गये हों, समा गये हों, प्रतिबिम्बित हुए हों, इसप्रकार एक क्षणमें ही जो (शुद्धात्मा) प्रत्यक्ष करता है, ज्ञेयज्ञायकलक्षण संबंधकी अनिवार्यताके कारण ज्ञेय-ज्ञायकको भिन्न करना अशक्य होनेसे विश्वरूपताको प्राप्त होने पर भी जो (शुद्धात्मा) सहज अनन्तशक्ति वाले ज्ञायकस्वभावके द्वारा एकरूपताको नहीं छोड़ता, जो अनादि संसारसे इसी स्थितिमें (ज्ञायक भावरूप ही) रहा है और जो मोहके द्वारा दूसरे रूपमें जाना–माना जाता है उस शुद्धात्माको यह मैं मोहको उखाड़ फेंककर, अतिनिष्कम्प रहता हुआ यथास्थित (जैसाका तैसा) ही प्राप्त करता हूँ । गाथा 200 पृष्ठ 368-369

प्रश्न : अभेद आत्मा और अखंड आत्मा कैसा है ?

समाधान : **टीका :**प्रथम तो परमाणुके परिणाम होता है क्योंकि वह (परिणाम) वस्तुका स्वभाव होनेसे उल्लंघन नहीं किया जा सकता और उस परिणामके कारण जो कादाचित्क विचित्रता धारण करता है ऐसा, एकसे लेकर एक–एक बढ़ते हुए अनन्त अविभाग प्रतिच्छे तक व्याप्त होनेवाला स्निग्धत्व अथवा रूक्षत्व परमाणुके होता है क्योंकि परमाणु अनेक प्रकारके गुणोंवाला है ।(पुदगल परमाणु अप्रदेशी है= एक प्रदेशी है उस पुदगल परमाणुके द्रव्य-गुण-पर्यायभी एक प्रदेशी है कयुंकी एक प्रदेशसे छोटा कीसीका क्षेत्र होता नहीं इससे समजमें आता है की जो क्षेत्रमें पुदगल परमाणुके द्रव्य और गुण है उसी क्षेत्रमें पर्याय भी है इससे सिद्ध होता की हरेक द्रव्यके द्रव्य-गुण-पर्यायके क्षेत्र एक ही है उसमें विभाग नहीं है। -लक्षण भेद है प्रदेश भेद नहीं है ।द्रव्य-गुण वह अव्यकत है = अंशीरूप है =अन्वयरूप होता है और पर्याय व्यकत है = अंशरूप है = व्यतिरकरूप होती है ।इससे जाननें में आता है की परिणामी परिणाममें ही छूपा हूआ है इसलीए समयसार गाथा 13में द्रष्टी का विषय इस प्रकार नव तत्वमें छीपी आत्मज्योति वोहि 'मैं हूं' कयोंकी व्यकत से अव्यकतमें - प्रगट से अप्रगट -स्थूल से सूक्ष्ममे लेजाना यह जिनागमकी शैली है।) गाथा 164 पृष्ठ 314

प्रश्न : सम्यग्दृष्टि जीव का विकासक्रम ?

समाधान : सम्यग्दृष्टि जीव अपने स्वरूपको जानता है–अनुभव करता है और अपनेको अन्य समस्त व्यवहारभावोंसे भिन्न जानता है जबसे उसे स्व-परका विवेकस्वरूप भेदविज्ञान प्रगट हुआ था तभी से वह समस्त विभावभावोंका त्याग कर चुका है और तभीसे उसने टंकोत्कीर्ण निजभाव अंगीकार किया है । इसलिये उसे न तो त्याग करनेको रहा है और न कुछ ग्रहण करनेको अंगीकार करनेको रहा है । स्वभावदृष्टिकी अपेक्षासे ऐसा होने पर भी, वह पर्यायमें पूर्वबद्ध कर्मोके उदयके निमित्तसे अनेक प्रकारके विभावभावरूप परिणमित होता है इस विभावपरिणतिको पृथक् होती न देखकर वह आकुल-व्याकुल भी नहीं होता और वह सकल विभावपरिणतिको दूर करनेका पुरुषार्थ किये बिना भी नहीं करता सकल विभावपरिणतिसे रहित स्वभावदृष्टिके बलस्वरूप पुरुषार्थसे गुणस्थानोंकी परिपाटीके सामान्य क्रमानुसार उसके प्रथम अशुभ परिणतिकी हानि होती है, और फिर धीरे धीरे शुभ परिणति भी छूटती जाती है ऐसा होनेसे वह शुभराग के उदयकी भूमिकामें गृहवासका और कुटुम्बका त्यागी होकर व्यवहाररत्नत्रयरूप पंचाचारको अंगीकार करता है यद्यपि वह ज्ञानभावसे समस्त शुभाशुभ क्रियाओंका त्यागी है तथापि पर्यायमें शुभराग नहीं छूटनेसे वह पूर्वोक्तप्रकारसे पंचाचारको ग्रहण करता है । गाथा 202 पृष्ठ 378